



ISSN Print: 2394-7500  
ISSN Online: 2394-5869  
Impact Factor: 5.2  
IJAR 2017; 3(6): 1287-1289  
[www.allresearchjournal.com](http://www.allresearchjournal.com)  
Received: 05-04-2017  
Accepted: 12-05-2017

**डॉ. कमलेश सरीन**  
एसोसिएट प्रोफेसर,  
हिन्दी विभाग स्वामी श्रद्धानन्द  
कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय,  
दिल्ली, भारत

**Corresponding Author:**  
**डॉ. कमलेश सरीन**  
एसोसिएट प्रोफेसर,  
हिन्दी विभाग स्वामी श्रद्धानन्द  
कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय,  
दिल्ली, भारत

## कबीर की भक्ति भावना

**डॉ. कमलेश सरीन**

### प्रस्तावना

'भक्ति' शब्द का शास्त्रगत अर्थ भजन करना या सेवा करना है। पर कबीर ने वेद शास्त्र में निहित ज्ञान को नहीं माना है। "पंडित मुल्ला जो लिखिगया, छडि चले हम कछू न लिया।" उन्होंने सहज रूप से मानव कल्याण के लिए जो कुछ अनुभूत सत्य प्राप्त हुआ था उसी पर विश्वास किया।

"कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूंढे वन माही  
ऐसे घट में पीव है दुनिया जानै नाही"

कबीर के समाज में ऐसे बहुत से लोग थे जो देखा देखी माला तिलक के साथ भक्ति करते थे।  
"बाहर क्या दिखलाए अनंतर जपिए राम  
कहां काज संसार से तुझे धनी से काम।"

कबीर परम्परागत भक्ति को न अपना कर स्वानुभूतिपरक भक्ति को अपनाते थे। कबीर ने भक्ति अवश्य की पर बिना फूल माला के, बिना चन्दन तिलक के, बिना देव और मन्दिर के, वे न पूजा करते थे न नमाज पढ़ते थे। यह निराकार कौन था यह राम और हरि कौन था जिसकी भक्ति कबीर कर रहे थे। कबीर ने इस बात को स्पष्ट रूप से कहा है कि यह तब जान सकते हैं जब अपने शरीर में निहित आत्मा को जान लगे। आत्मा ही तो राम है। वही तो सब में रम रहा है। इसलिए हरि को पाने का उपाय है आत्मा की भक्ति, आत्मा का भजन।

कबीर ने आत्मा भजन को हरि भजन कहा है। आत्मा की पहचान को ही निराकार की पहचान माना है। कबीर कहते हैं – आकाश, पाताल तथा दसों दिशाओं में गगन का विस्तार है। इस आकाश में अनेक पिंड घूम रहे हैं। जड़ भी घूम रहा है, चेतन भी घूम रहा है। चेतन शक्ति जो नश्वर शरीर में आकर जीव का स्वरूप धारण करती है और जब शरीर नष्ट हो जाता है तब वह पुनः इसी विशाल गगन में व्याप्त हो जाती है। महान् आकाश ज्यों का त्यों रह जाता है।

इस आकाश में युगों से जीव पिण्ड बन बिगड़ रहे हैं। वही चेतना हर व्यक्ति में है। फिर क्या उस चेतना को नहीं पहचाना जा सकता है। कबीर कहते हैं कि उस चेतना को पहचानने के लिए जीव को देखना चाहिए कि बिना मेरे जीवन को नहीं देख सकते। मरने का अर्थ है उन सारे सांसारिक लगाव से अलग हो जाना, जिनमें कोई जन समुदाय, काम, क्रोध, मोह और लोभ के फंदे में पड़ जाता है, नैतिकता को खो देता है।

कबीर कहते हैं कि तन मन का अन्त ही 'भाव भगति' है, और इसी भाव भक्ति से हरि से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। तन मन के समर्पण से 'मैं' का भाव मिल जाता है। तब हरि का रूप ही रह जाता है। भक्त अभिमान तथा स्वार्थ को छोड़कर भाव प्रेम की पूजा करता है। भाव प्रेम से ही सद्व्यवहार बनता है। कबीर ने इसी भाव प्रेम की पूजा समाज में रहकर की थी। 'मैं' का भाव मिट जाने से अभिमान नहीं रहता, तब वह भक्त है। भक्त ही नहीं तब वह भक्त भगवान् के समान है।

"जब मैं था तब हरि नहीं  
अब हरि हैं मैं नाहि।"

जो मनुष्य अपने को इस अनुभव में उतार लेता है। वह भक्त है, उसकी मुक्ति में कोई सन्देह नहीं। कबीर ने सार रूप में कहा कि भक्ति छल-कपट रहित व्यापार है। वही भक्त है। कपट सभी दुर्गुणों की जड़ है। धोखा, छल, ठगी, चोरी, झूठ, भ्रष्टाचार आदि कपट के ही रूप हैं। मानव के मन में पाप है। यह मानव दुर्व्यवहार मनुष्य को पुण्य करने से रोकते हैं। नर तन बार-बार नहीं मिलता।

उसे सत्कर्म करना चाहिए। उसे सब के साथ सच्चाई का व्यवहार करना चाहिए। यही मानव की भक्ति है।

“मानुष जन्म दुर्लभ है, देह न बारम्बार  
तरुवर ज्यों पत्ता झड़े बुहरि न लागे डार।”

कबीर के प्रेम में त्याग और तपस्या को विशेष महत्व दिया गया है। भक्त को साधना से मुख नहीं मोड़ना चाहिए। नारद भक्ति सूत्र में कहा है, ‘विषय, त्याग और कुसंग त्याग से भक्ति आती है। लोक समाज में भगवद् गुण कीर्तन से भी भक्ति आती है, किंतु प्रधान रूप से यह प्राप्त हो जाती है।

कबीर ने आत्मा को भगवान माना है। हर एक आत्मा का रूप भगवान का रूप है। इसलिए सब को सेवा के साथ में भगवान की भक्ति करनी चाहिए। सेवा तभी भक्ति कही जा सकती है जब वह निष्काम भाव से की जाए।

सतसंग करना आवश्यक है। मानव देह पाकर कर्म करना चाहिए। भक्ति करके मनुष्य भूखा नहीं रह सकता। बिना कर्म किए राम को दोष देना उचित नहीं। कबीर सत्संग को ही जीवन का सार और मोक्ष मानते हैं।

साधु की सेवा भगवान की सेवा है। साधु संगति प्रेरणा ही नहीं देती, अपितु उसे दृढ़ भी करती है। कबीर साधुओं से मिलने के लिए बड़े ही उत्सुक रहते हैं, क्योंकि उनकी संगति के बिना इस लोक में कहीं भी चैन नहीं है। कबीर राम और भक्तों में कोई भेद नहीं समझते। राम या राम भक्त विपक्षी कोई भी मिल जाने से भक्ति सिद्ध हो जाती है। कबीर ने कहा, वह घड़ी मुहर्त तथा दिन धन्य है, जिस दिन भगवान भक्त के घर आ जाते हैं, जिस प्रकार भगवान की कृपा से ही भगवान की प्राप्ति होती है, वैसे ही साधु जनों की प्राप्ति भी भगवद् कृपा से ही होती है।

साधु संगति को ही कबीर बैकुण्ठ मानते हैं। साधु सेवा के बिना ही सेवा भी नहीं बन पाती। जिस प्रकार साधु और राम में भेद नहीं है। उसी प्रकार मुझ और भगवान में भी भेद नहीं है। जिस प्रकार कबीर ने ‘सन्त राम हैं एको’ कहा है उसी प्रकार गुरु गोविन्द तो एक है – भी कहा है। गुरु सेवा भी भक्ति की एक भूमिका है।

कबीर आत्म दृष्टा थे। कबीर कहते हैं कि जिस समाज में मनुष्य का रहना जीना हो रहा है। उसी समाज में भगवान भी रहता है, जो सभी मनुष्यों में भगवान का रूप देखता है। वह भक्त स्वयं भगवान है। वही भक्त सत्य दृष्टा है। उसे ही पूर्णतः की दृष्टि मिल सकती है।

कबीर ने स्वयं को स्त्री में कल्पित कर हरिभजन किया है। इसी रूप में उन्होंने समाज को यह बताने का यत्न किया कि पत्नी का व्यवहार पति के साथ, बहु का सास के साथ, माँ का बेटे के साथ, बहिन का भाई के साथ किस तरह होना चाहिए। जहां विश्वास नष्ट हो जाता है वहां संबंध टूट जाता है। कबीर ने पतिव्रता नारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हरेक व्यक्ति को पतिव्रता नारी की तरह रहकर समाज सेवा करनी चाहिए। भक्त तो वही है जो विश्वास से बिना कपट किए समाज की सेवा करता है।

कबीर कालीन समाज दासता के बन्धन से मुक्त नहीं था। वह इंसान और धर्म का दास था। विविध पाखंडों से मुक्त होने के लिए कबीर ने दूसरे ढंग से दास भक्तों का संगठन किया था। ये भक्त कहने को दास थे, पर विचारों से बड़े स्वतंत्र थे। ये वास्तव में दासवर्ग से उठे हुए ज्ञानी भक्त थे। कबीर की दास भक्ति में प्रेम सहानुभूति और करुणा की अभिव्यक्ति है। कबीर अपने को दास कहकर बिना मत प्रकट करते हैं और साथ ही साथ सद्व्यवहार का भी प्रचार करते हैं। कबीर का दास भाव समाज के प्रति विश्वासपूर्ण सेवाभाव पैदा करता है।

कबीर ने नवधा भक्ति के अंगों को स्वीकार नहीं किया, उन्होंने विशेष रूप से उन अंगों का परिहार किया है जो आचार और

कर्मकाण्ड सम्बन्धी हैं। जिन में अंतःसाधना के स्थान पर बाहरीय विधान पर विशेष जोर दिया गया है, जैसे अर्पण और वन्दना आदि। कबीर ने भक्ति साधना को उत्कट साहसी लोगों का ही कार्य कहा है। कबीर और भक्तों का मार्ग आत्म समर्पण का है। इस पर कबीर अपनी समग्र दुर्बलताओं को स्वीकार करते हुए भगवद्पूर्ण कर देते हैं। प्रथम पक्ष में कबीर अपनी विवशता का अनुभव करते हैं और अपनी सम्पूर्ण विवशता के साथ वर्णन किया है, कि योग की क्रिया, एक सीढ़ी है, एक पड़ाव मात्र है। जीव और ब्रह्मा के मिलन की उस चरम और शाश्वत अवस्था का जहां पर चित्र सर्वथा निश्चल होकर उस के साथ अद्वैत हो जाता है। इस अवस्था का जब कबीर को अनुभव हो गया तो उन्हें योग की ये क्रियाएं अवास्तविक सी लगी और अवधूतों को पुकार कर चुनौती देकर उन्होंने भाव का योग साधने का उपदेश दिया है। कबीर की सहज समाधि की अवस्था ही साधना की अंतिम परिणति हुई जिसमें कभी शांति का अन्त नहीं होता और जिसमें प्रति क्षण उठते बैठते उसका विस्मरण नहीं होता। इस तरह कबीर का योग सामान्य योग नहीं था, कबीर तन के योग की अपेक्षा मन के योग की सफलता प्राप्ति के लिए अधिक उचित मानते थे।

कबीर ने ज्ञान का अर्थ अनेक तरह के बाहरी आडम्बरों जैसे – मूर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा, तिलक माला आदि के खण्डन से लिया है। कबीर बहुत स्पष्ट जोरदार शब्दों में नसीहत देते हैं कि पढ़ने के फेरे मत पड़ो। यह मार्ग बुद्धि को जड़ बनाता है और हृदय प्रेम तत्व से ऊँचा बना रहता है। कबीर ने दार्शनिक विवेचना अथवा धर्म के मूल तत्व को छोड़कर कर्म कांड में फंसाने को ही अज्ञान और माया कहा है। उन्होंने इस तरह के कार्यों में लिये ज्ञानियों की अपेक्षा गृहस्थों को उच्च बताया है। कबीर को ज्ञान की प्राप्ति स्पष्ट रूप से हरि भक्ति में हो रही है, जो मनुष्य के हृदय को अपने आप ही सभी तरह भगवान की शरण में जा पड़ते हैं। इस भूमिका के दूसरे पक्ष में कबीर राम की अन्याश्रय की भावना करते हैं। इस पर उन्हें परमात्मा के सिवा अपना और कुछ नहीं दिखाई देता शरणागति के पक्ष में कबीर का मोह माया से छुटकारा हो जाता है। क्योंकि उस का झूठा रूप उसके सामने आ जाता है। माया के मिथ्यात्व की भावना उन्हें प्रेरित करती है। वे अपना सर्वस्व उसी को समर्पित करते हुए कहते हैं –

“मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा  
तेरा तुझ को सौंपता, क्या लागे है मेरा।”

इस पक्ष के चौथे पक्ष में कबीर अपने ऊपर परमात्मा का पूर्ण अधिकार स्वीकार करके अपना सब कुछ उसकी इच्छा को सौंप देते हैं। भूमिका के अंतिम पक्ष में कबीर परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ जानते हुए भी न जानने का अनुभव करते हैं। यह कहते मौनाश्रय लेते हुए प्रतीत होते हैं।

‘रवि ससि दोउं एके नाही बहत नहीं पवना  
रंग न युग न स्याम अर्थवन वेद नहीं व्याकरना  
तेरी गति तू ही जाने कबीरा तो सरना।’

इस प्रकार कबीर की भक्ति की छः भूमिकाएं दृष्टिगोचर होती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि वैराग्य न केवल भक्ति को प्रेरित करता है। अपितु स्वयं भक्ति का काम करता है।

कबीर की भक्ति की एक अन्य बड़ी विशेषता है – योग में आस्था। कबीर ने अनुभव में पाप, दोष और वासना को छोड़कर निर्मल बना देता है।

कबीर की भक्ति जीवन यापक का एक सही ढंग है। मनुष्य का मनुष्य के साथ कर्तव्य है। भाव भक्ति से मनुष्य मानव मात्र के प्रति कारुण्य बनाता है। सहृदय बनाता है। दीन दुःखियों के प्रति दया होती है तब वह लोक सेवा को ही भक्ति मान लेते हैं।

मन, वाणी, कर्म से सुमिरन करता है। सांसारिक मोह, दुख को त्याग कर बन्धन मुक्त होता है। स्वार्थ के कारण भाव भक्ति का रूप बिगड़ जाता है। तभी भक्त सब कुछ भूलकर ऐकेश्वर भक्ति करता है। भाव भक्ति से ही ईश्वर मिलता है। कबीर ने सारे अनैतिक कार्यों की निंदा करके सबको भक्ति करने का उपदेश दिया था, बिना भाव भक्ति के दुःख से छुटकारा और सुख प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए समाज में व्यक्ति को भाव भक्ति कर्त्तव्य के रूप में करनी चाहिए।

विनम्रता भक्त का प्रमुख गुण है, जो उसे महान बनाता है। समाज के साथ उनकी स्वामी भक्ति उस पालतू कुत्ते की तरह थी जो स्वामी की हरेक आज्ञा को मानता है।

कबीर अपने को राम के पिंजरे में बन्द तोता मानते हैं तो कभी वे हरि भक्ति की मस्ती में अपने को हरि का हाथी मानते हैं। कबीर के इन विविध वर्णनों से ऐसा लगता है कि समाज के प्रति विनम्रता प्रदर्शन ही उनका मुख्य उद्देश्य था, जिससे कि लोग अभिमान तथा पाखंड को भूलकर पारस्परिक प्रेम स्थापित करें। वस्तुतः समाज में प्रेम भाव का प्रचार-प्रसार ही उनकी भक्ति का उद्देश्य था।

प्रश्न है कि भक्ति एकान्तिक है या लोक संग्रहात्मक एक लेखक की धारणा है कि कबीर ने उसे एकान्तिक नहीं रहने दिया उसका स्वरूप सरल और सहज है। अत्यन्त लोकोपयुक्त है। कबीर ने अपनी भक्ति को अनिवार्य नहीं ठहराया। उन्होंने स्मरण, सत्संग और सदाचार को ही विशेष महत्व दिया। अतः उनकी भक्ति एकान्तिक की अपेक्षा लोक संग्रहात्मक है।

### निष्कर्ष

कबीर भाव भक्ति का संदेश लेकर भारत में अवतीर्ण हुए थे। इस प्रकार हिन्दु जाति कृत कृत्य हो गई। नारद की प्रेमभाव प्रधानभक्ति का कबीर पर अधिक प्रभाव दिखता है। सूफियों के इश्क ताव ने भी उनकी भक्ति का स्वरूप संवारा है। हठयोग साधना की कष्ट साधना भी उनकी भक्ति को प्रभावित किए हुए है। कबीर की भक्ति भागवत पुराण से भी कम प्रभावित नहीं है। वे जाति-जगत भावना में विश्वास नहीं करते। कबीर समाज में भक्ति के नाम पर अनेक तरह के कर्मकाण्ड प्रचलित थे। भ्रष्टाचार फैला हुआ था जन जीवन में नैतिकता के लिए कबीर ने अपनी भक्ति का प्रचार मानव मात्र की सेवा, आनंद और संगठन के लिए किया था। भक्ति का सार असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण है। कबीर की भक्ति समाज के प्रति नैतिकता के लिए कबीर ने अपनी भक्ति का प्रचार मानव मात्र की सेवा आनंद एवं संगठन के लिए किया था। कबीर की भक्ति समाज के प्रति नैतिकता का दृष्टिकोण रखती है। जब तक मनुष्य की स्वार्थपूर्ण जीवन की ऊपरी धारणाएं खाक नहीं हो जाती तब तक नैतिकता के रहने के स्तर पर नहीं उतार सकता। कबीर की भक्ति जीवन यापक का एक ढंग है, जिसे पढ़कर ही व्यवहार में उतार कर जाना जा सकता है। इसीलिए वह अनुभवगम्य है, यह अनुभव समाज के सम्पर्क में रहकर ही पाया जाता है। वस्तुतः समाज ही भक्त का मन्दिर है। जिस में वह सद्व्यवहार की भक्ति करके मोक्ष पाता है। इसके अभाव में हिन्दू-समाज न मालूम किस अवस्था में पहुंच गया।

### संदर्भ सूची

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'कबीर'।
2. पंडित परशुराम चतुर्वेदी, 'उत्तरी भारत की संत परम्परा'।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य की भूमिका'।
4. डॉ. राम कुमार वर्मा, 'कबीर का रहस्यवाद'।